इकाई 4 द्वंद्व परिप्रेक्ष्य*

संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 शास्त्रीय सिद्धांतकार

4.3 आधुनिक संघर्षवादी विचारक

4.4 विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत

4.5 संघर्ष के सिद्धांत की वर्तमान प्रवृतियां

4.6 सारांश

4.7 सन्दर्भ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप जान सकेंगेः

- समाजशास्त्र में द्वंद्व की अवधारणा का स्वरूप क्या है?;
- संघर्ष के समाजशास्त्र की शास्त्रीय अवधारणा;
- प्रमुख विचारकों का योगदान; तथा
- आधुनिक समाज संघर्ष के सिद्धांत को किस रूप में स्वीकार करता है।

4.1 प्रस्तावना

आरंभ के दौर में समाजशास्त्रीय विचारक सामाजिक अखंडता के संरचनात्मक सिद्धांत में विश्वास नहीं रखते थे। संरचनात्मकता व द्वंद्वात्मक सिद्धांतों में आधारभूत अंतर यह है कि दोनों के गर्भ में परिवर्तन की प्रवृत्ति अनिवार्य रूप से मौजूद रहने के बावजूद उनके अध्ययन के केंद्र अलग-अलग हैं। यद्यपि समाजशास्त्रीय सिद्धांत में द्वंद्वात्मकता की परिकल्पना को बीसवीं शताब्दी में ही स्वीकार किया गया तथा इसे राल्फ दहेंदोर्फ और कॉजर की किताबों में समाजशास्त्र की उपशाखा के रूप में मान्यता मिली, परंतु द्वंद्वात्मक सिद्धांत प्राचीन ग्रीक विचारक थूसी डाईडस के समय में ही अपना अस्तित्व पा चुका था। द्वंद्वात्मक सिद्धांत तथा प्रक्रियात्मक सिद्धांत ढांचा और परिवर्तन दोनों को ही केंद्र में रखकर चलते हैं, दोनों के सरोकार दुनिया के सभी समाजों से अनिवार्य रूप से जुड़े हैं। टकराव और सामाजिक परिवर्तन सामाजिक ढांचों में तभी जन्म लेते हैं जब हम बदलाव चाहते हैं। इसके लिए हमें संपूर्णता के साथ सामाजिक ढांचे पर विचार करना होगा क्योंकि बदलाव सदा सामाजिक ढांचे में ही आते हैं। यद्यपि क्रियात्मकतावादी सिद्धांतों के ठीक विपरीत टकराव के सिद्धांत में विश्वास रखने वाले विचारक यह मानते हैं कि जब सामाजिक ढांचे में तेजी से परिवर्तन आते हैं तो उनके केंद्र में टकराव एवं द्वन्द्व अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है। टकराव के कारण कभी-कभी समाज में रचनात्मक परिवर्तन आते हैं जो समाज को एक स्थिरता प्रदान करते हैं और कभी-कभी सामाजिक विसंगतियां बढ़ जाती हैं और समाज में अस्थिरता आ जाती है। इस प्रकार द्वंद्वात्मक सिद्धांत में भी सामाजिक अखंडता और स्थिरता की प्रवृति

*यह इकाई प्रो. सुभद्रा चन्ना के द्वारा लिखी गई है।

उसी प्रकार देखने को मिलती है जिस प्रकार प्रक्रियात्मक सिद्धांत में, अंतर केवल इतना रहता है कि हम इन दोनों सिद्धांतों को किस प्रकार देखते हैं। समाज के निर्माण, विकास, परिवर्तन तथा सामाजिक संगठनव संबंधों की व्याख्या करते समय इनका इस्तेमाल किस प्रकार करते हैं। समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में सामाजिक समूहों को आधारभूत इकाई माना जाता है, व्यक्तियों को नहीं। दूसरे शब्दों में व्यक्तियों के बीच होने वाले टकराव बौद्धिक हित के विषय नहीं है, अपितु समूहों के मध्य के विषय हैं। ऐसे समूहों की पहचान करना तथा उनका वर्गीकरण करना जो सक्षम होते हैं तथा जिनमें निरंतर टकराव होते रहते हैं वास्तव में द्वंद्वात्मक सिद्धांत के विषय हैं।

समाज के अंदर स्तरीकरण, असमानता तथा कुछ लोगों के द्वारा अन्य लोगों पर अपना आधिपत्य बनाए रखने की प्रवृत्ति और उनसे जुड़ी गतिविधियां द्वंद्वात्मक सिद्धांत के आधारभूत विषय हैं। समाज में होने वाले कार्य प्रायः दो प्रवृत्तियों से ज्यादा प्रेरित होते हैं। एक- असमानता को दूर करने के लिए उठाए जाने वाले कदमों से तथा दूसरा आधिपत्य की प्रवृत्ति के विरोध के रूप में। समाजों में जो टकराव की स्थिति बनी रहती है उसका प्रमुख कारण है सामाजिक संसाधनों का असमान वितरण। असमानता का पीढ़ी दर पीढ़ी अस्तित्व सामाजिक टकराव का कारण भी है और प्रभाव भी। यही कारण है कि सामाजिक टकराव कभी थमते नहीं। जब टकराव बहुत बढ़ जाते हैं तो समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आते हैं जिनके कारण सामाजिक संगठन के नए सिद्धांतों का जन्म होता है और इस बात पर जोर दिया जाता है कि संसाधनों का सही तरीके से फिर से वितरण किया जाए। उदाहरण के लिए- रूस में जब क्रांति हुई तो राजशाही को उखाड़ फेंका गया और उसके स्थान पर एक नया सामाजिक ढांचा तैयार हुआ जिसे साम्यवादी सामाजिक ढांचा कहा गया और साम्यवादियों ने सत्ता संभाली। आम जनता और राजशाही के समर्थकों के बीच जबरदस्त टकराव हुआ था और वह बढ़ते-बढ़ते इस स्तर पर पहुंच गया था कि क्रांतिकारियों ने पूरे शाही परिवार का कत्ल कर दिया और सत्ता के ढांचे को पूरी तरह बदल डाला।

समाज में असमानता का जन्म शक्ति के आसमान वितरण के कारण ही हुआ है और स्वयं असमानता ही असमान वितरण का कारण भी बनती है। अतः हम कह सकते हैं कि शक्ति के असमान वितरण से असमानता का जन्म होता है और यही असमानता शक्ति के असमान वितरण की प्रवृति को जन्म देती है। इस प्रकार असमानता के विरोधियों तथा स्थितिवादियों के बीच संघर्ष तथा टकराव की स्थिति सदा बनी रहती है। द्वंद्वात्मक सिद्धांत को मानने वालों की अगली पीढ़ी का सदा यह प्रयास रहता है कि वह यथास्थिति वादका विरोध करे और नियंत्रण एवं आधिपत्य के विभिन्न स्वरूप जो समाज में मौजूद हैं उन्हें तोड़ कर आधुनिक प्रगतिशील समाज का निर्माण करे। द्वंद्वात्मक सिद्धांत की व्याख्या करते समय अध्ययन कर्ताओं को शब्दों का इस्तेमाल करते समय बहुत सावधान रहना होगा, क्योंकि कई बार एक जैसे शब्दों के अर्थ अलग-अलग होते हैं जैसे विभिन्नता एवं स्तरीकरण तथा विरोध एवं टकराव। इस प्रकार जरूरी नहीं है कि स्तरीकरण के समय विभिन्नता अनिवार्य रूप से मौजूद हो जब तक कि असमानता की स्थिति नहीं होती, अर्थात असमानता की स्थिति में विभिन्नता की बात आती है, सामाजिक स्तरीकरण में नहीं। तथा विरोध आवश्यक रूप से टकराव में नहीं बदलता है जब तक कि विरोध करने वालों के मन में शक्ति प्रदर्शन युक्त भिड़ंत की प्रवृत्ति मौजूद ना हो। टकराव की क्षमता व संभावनाओं का मतलब यह नहीं है कि वास्तव में टकराव होगा ही और यदि टकराव हो भी जाए तो भी हमेशा यह जरूरी नहीं है कि उससे समाज में कोई बड़ा परिवर्तन आ जाए।

4.2 शास्त्रीय सिद्धांतकार

आरंभिक दौर में टकराव के सिद्धांत बृहद ऐतिहासिक थे। इन सिद्धांतों के हिसाब से जो टकराव हुए उनके कारण समाजों में बड़े स्तर पर परिवर्तन आए। ये टकराव बड़े सामाजिक समूहों के बीच हुए थे जिनके स्वार्थ व लक्ष्य एक दूसरे के धुर विरोधी थे। इन टकरावों के पीछे ऐतिहासिक कारण थे और इसीलिए इन के फलस्वरूप व्यापक परिवर्तन हुए।

इस कोटि के सिद्धांतकारों का लक्ष्य समाज के विभिन्न वर्गों के बीच भारी टकराव उत्पन्न कराना और उसके द्वारा आमूल-चूल परिवर्तन लाना था। इनमें सबसे अधिक प्रभावशाली सिद्धांतकार 19वीं सदी के कार्लमार्क्स थे। उनके ऐतिहासिक भौतिक द्वंदात्मक सिद्धांत ने सामाजिक बदलाव के उद्देश्य से टकराव के सिद्धांत को जन्म दिया।

आर्थिक संसाधनों के असमान वितरण से समाज में दो वर्ग स्वतः ही बन जाते हैं। एक वर्ग उन लोगों का होता है जिनके पास अधिक संपत्ति एकत्रित हो जाती है और दूसरा वर्ग उन लोगों का बन जाता है जिनके पास बहुत कम संपत्ति होती है या नहीं होती। अधिक संपत्ति तथा दबदबे वाले लोग कम संपत्ति तथा कम दबदबे वाले लोगों का शोषण करने लगते हैं जिससे समाज शोषक और शोषित दो वर्गों में बँट जाता है। जिनके पास संपत्ति अधिक होती है, उन्हें संपन्न अथवा अमीर कहा जाता है और जिनके पास संपत्ति बहुत कम होती है अथवा होती ही नहीं उन्हें गरीब कहा जाता है। पूंजी के आधार पर उन्हें पूंजीपति तथा श्रमिक भी कहा जाता है। साम्यवादी घोषणा पत्र में उन्हें पूंजीपति तथा मजदूर कहा गया है। यह पूंजीपति मजदूर के काम के बदले उसे पूरा वेतन नहीं देता, उसका शोषण करता है। इसके पीछे पूंजीपति का उद्देश्य मजदूरों को अपने अधीन बनाए रखना तथा उन पर शासन करना होता है। कार्ल मार्क्स ने इस वर्ग भेद के पीछे कारण के रूप में विद्यमान सूक्ष्म अंतर को नयी पहचान दी थीद्य कार्ल मार्क्सने इस टकराव की स्थिति को बारीकी से समझने के लिए विभिन्न कालावधियों के समाजों का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण किया और उसके कारण उत्पन्न होने वाले टकराव की व्यापक व्याख्या की और अपने सामाजिक विकास के सिद्धांत को जन्म दिया।

अपने सामाजिक विकास के सिद्धांत के आधार पर कार्ल मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि सामंतवाद अंततः पूंजीवाद को जन्म देगा और पूंजीवादियों के शोषण व अत्याचारों से तंग आकर शोषित एकजुट होंगे और उनके बीच टकराव से जो क्रांति होगी उससे समाजवाद आएगा, सर्वहारा का शासन होगा और वर्ग भेद हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगा और समाज में स्थिरता आ जाएगी। परंतु इतिहास साक्षी है कि ऐसा नहीं हुआ। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि कार्ल मार्क्स का सिद्धांत राजनैतिक रूप से सही साबित नहीं हुआ। यद्यपि द्वंदवाद का सिद्धांत अपनी जगह सही है क्योंकि विरोधी ताकतें स्वाभाविक रूप से आपस में टकराती हैं और उसके परिणामस्वरूप समाज का एक तीसरा स्वरूप सामने आता है जिस में स्थिरता होती है। यह तीसरी अवस्था इतिहास की प्रेरक शक्ति होती है जो समाज में रचनात्मक परिवर्तन लाने के लिए जरूरी है। यही समाजशास्त्र में टकराव अथवा द्वन्द्वात्मक सिद्धांत का आधार है। समाजशास्त्र का द्वन्द्वात्मक सिद्धांत वास्तव में गैर-राजनैतिक है। यह न तो साम्यवाद का पक्ष लेता है, न पूंजीवाद का, न ही किसी अन्य राजनैतिक विचारधारा का। इसका सीधा सा उद्देश्य विभिन्न सामाजिक समूहों तथा सामाजिक ताकतों की पहचान करना है जिनके दृष्टिकोण के कारण समाज में बदलाव आते हैं और समाज के नए ढांचों तथा संगठनों का जन्म होता है।

दूसरा वर्गवाद का सिद्धांत मैक्स वेबर का है। उन्होंने कार्ल मार्क्स के सिद्धांत में संशोधन किया था। इस संसोधन के आधार पर उन्होंने यह साबित किया कि समाज में स्तरीकरण

की प्रक्रिया के कारण जो वर्ग दिखाई पड़ने लगते हैं उनके पीछे केवल आर्थिक कारण नहीं होते। समाज में आर्थिक आधार पर जो वर्ग बनते हैं उनके अलावा हैसियत गुट तथा ताकत गुट भी बनते हैं जिनका आर्थिक संसाधनों से कुछ लेना देना नहीं होता है। इन गुटों के कारण भी समाज में स्तरीकरण होता है। वेबर सामाजिक संगठनों पर भी जोर देते हैं। समाज में बनने वाली अनेक संगठनों के बीच होने वाले टकरावों के फलस्वरूप भी समाजों में क्रांतिकारी परिवर्तन होते हैं। इस प्रकार संगठनों के द्वारा समाज स्वयंप्रभुत्व एवं नियंत्रण की स्थिति उत्पन्न कर लेता हैं। वेबरने तीन प्रकार के आदर्श संगठनात्मक ढांचों का विवरण दिया है- आदर्श स्वरुप प्रणाली, नौकरशाही तथा पैदक। किसी भी प्रकार कि व्यवस्था हो- राज्य स्तर,चर्च स्तर अथवा आर्थिक जगत की, हर व्यवस्था में प्रभुत्व इन तीनों रूपों में ही विद्यमान रहता है। वेबरने प्रभुत्व के स्वरूपों की व्याख्या करते हुएयह बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार ये समाज द्वारा स्वीकार कर लिए जाते हैं, और शोषण तथा भेद-भावपूर्ण होते हुए इनकी सत्ता बनी रहती है। कुछ सामाजिक तंत्र इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, समाजीकरण आदि सामाजिक तंत्र लोगों पर इस बात के लिए दबाव बनाते हैं कि वे सामाजिक संस्थानों का प्रभुत्व स्वीकार करें। गिरजाघर, राज्य आदि संस्थानों के प्रति लोगों में निष्ठा कम से कम तब तक तो जरूर बनी रहती है जब तक कि उनका कोई अन्य ऐसा विकल्प अस्तित्व में नहीं आता जो उनकी न्यायसंगतता और ढांचे को चुनौती दे सके। इस प्रकार विरोधी ताकतों को भी संगठित होकर अपनी न्यायसंगततातथा ढांचागत व्यवस्था को प्रभावशाली बनाने के लिए निरंतर प्रयास करने पड़ते हैं। उदाहरण के लिए नए राजनैतिक दल को तार्किक एवं विधि सम्मत, यहां तक कि पारंपरिक रूप से भी सक्षम नेतृत्व का परिचय देना पड़ता है, भले ही उसका नेता करिश्माई होद्य अगली पीढ़ी को नेतृत्व देने के लिए या लोकतंत्र में चुनाव प्रणाली का सहारा लेना पड़ता है या वंश परंपरा से मिली राजनैतिक शक्ति का उपयोग करना पड़ता है। मार्टिन लूथर किंग के नेतृत्व में एक धार्मिक आंदोलन हुआ और कैथोलिक चर्च की सत्ता के विरुद्ध संघर्ष छेड़ा गया और उसके परिणामस्वरूप धार्मिक सुधार हुएद्य टकराव के बाद यह परिणाम सामने आया कि नई धार्मिक विचारधारा अस्तित्व में आ गई जिसे प्रोटेस्टेंट नाम दिया गयाद्य और बाद में उसके संचालन के लिए भी नए संगठनात्मक नियम बनाने पड़े,उसकी आंतरिक व्यवस्था कायम करनी पड़ी और अन्य संगठनों की तरह उसके उत्तराधिकार की परंपरा भी सुनिश्चित करनी पड़ी। यह सब मार्टिन लूथर किंग के करिश्माई व्यक्तित्व के कारण संभव हो सका। परंतु अब प्रोटेस्टेंट चर्च का कोई करिश्माई नेता नहीं है इसके सदस्यों को अंतरिम कानूनों एवं नियमों के अनुसार प्रशिक्षण दिया जाता है और व्यवस्था संभालने के लिए विभिन्न पदों पर नियुक्ति परीक्षाओं के आधार पर होती है। यद्यपि कैथोलिक चर्च के नियमों व कानूनों में परिवर्तन लाने के लिए बहुत बड़ा संघर्ष करना पड़ा था और बहुत बड़ा बदलाव भी हुआ था परंतु यह संघर्ष और बदलाव कोई अंतिम संघर्ष या अंतिम बदलाव नहीं है। अब भी खूनी संघर्ष होते हैं जैसे कि आयरलैंड में हुआ और नई व्यवस्था तथा उत्तराधिकार के नए नियमों के आधार पर प्रोटेस्टेंट चर्च के अनुयाई काम कर रहे हैं इस तरह के टकराव एवं बदलाव समाजों में पहले भी होते रहें हैं और आगे भी होते रहेंगे। सामाजिक तंत्र ऐसे ही काम करता है।

समाजशास्त्र के विकास में मैक्स वेबर का बहुत बड़ा योगदान रहा है और उनकी छाप भी उस पर दिखाई पड़ती है। फिर भी उनके सिद्धांतों और विचारों को अंतिम नहीं माना जा सकता। उनके बाद जो नए समाजशास्त्री आए उन्होंने मैक्स वेबर के सिद्धांत का अक्षरशः पालन नहीं किया। उन्होंने अपने नए सिद्धांत बनाएं। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री लेविस कोसर का भी वर्ग भेद के द्वंदात्मक सिद्धांत की प्रतिस्थापना में विशेष योगदान रहा है। उनका जन्म 1913 में बर्लिन में हुआ था। पेरिस में सोरबोन में उन्होंने अध्ययन किया और द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मन वासी होने के कारण उन्हें गिरफ्तार किया गया था। बाद में उन्होंने

अमेरिका में शरण ले ली और न्यूयॉर्क के कोलंबिया विश्वविद्यालय में रॉबर्ट के मर्टन के मार्गदर्शन में अनुसंधान कार्य किया और पी.एच.डी की उपाधि प्राप्त की। कोजर ने मैक्स वेबर के सिद्धांतों का पालन नहीं किया। इसके स्थान पर उन्होंने महान समाजशास्त्री सिम्मल के विचारों का अनुसरण किया। उनका विचार यह है कि टकराव वंशानुगत रूप से केवल समाजों में नहीं होते बल्कि मनुष्यों के व्यक्तित्व में ही होते हैं। टकराव हम मनुष्यों की प्रकृति के अनिवार्य अंग हैं। कोजर ने पूर्ण एवं आंशिक पृथक्करण के सिद्धांत को जन्म दिया। पूर्ण प्रथक्करण तब होता है जब किसी मानव समूह अथवा समुदाय के सामने संसाधनों की इतनी कमी हो जाती है कि उनके जीवन को खतरा पैदा हो जाता है। उनकी आवश्यक आवश्यकतायें जैसे भोजन, पानी, चिकित्सा और घर उन्हें उपलब्ध नहीं हो पाते। आंशिक पृथक्करण की प्रकृति समाज में तब जन्म लेती है जब लोगों के पास भरपूर संसाधन नहीं होते और गरीब और अमीर की खाई बहुत बढ़ जाती है। प्रायः यह देखने में आता है कि अत्यधिक गरीबी में गुजारा करने वाले लोग बहुत कम हिंसक होते हैं क्योंकि वे ऐसा करने का साहस नहीं जुटा पातेद्य दूरस्थ ग्रामों में रहने वाले लोग भुखमरी के शिकार हो जाते हैं, भूख के कारण उन्हें अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ते हैं। फिर भी ऐसा कभी सुनने में नहीं आया कि ऐसे लोगों ने अपनी भूख मिटाने के लिए संघर्ष किया हो। कोजर का यह मानना है कि संपूर्ण पृथक्करण की अवस्था से लोग जब आंशिक पृथक्करण की अवस्था में आते हैं तो उनमें संघर्ष करने की प्रवृत्ति ज्यादा बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए दलित जब गरीबी, पिछड़ेपन और अभाव के कारण समाज की मुख्यधारा से बिल्कुल अलग-थलग पड़ गए थे तो वे पूर्व पृथक्करण की अवस्था में थे, तब उन्होंने कोई संघर्ष नहीं किया लेकिन जब उन्हें दलित आंदोलन का सहारा मिला तो वे पहले की तुलना में टकराव में अधिक विश्वास करने लगे और ज्यादा हिंसक हो गए। यही वजह है कि दलित आंदोलन ग्रामीण अंचलों से आरंभ नहीं हुआ। यह शहरी क्षेत्रों से जहां उद्योग धंधों ने जन्म लिया और गाँवों से पलायन कर के लोग मजदूरी करने शहरों में पहुंचे तब दलित आंदोलन का जन्म हुआ। उसकी वजह यह थी कि जब वे कुछ पैसे कमाने लगे तो वे सामूहिक रूप से कार्य करने लगे। कार्य स्थलों पर बने समूह बड़े होते गए और उनमें साथ खड़े होने और संगठित होने की प्रवृत्ति जन्मी। ऐसे में उन्हें बी.आर.अंबेडकर जैसे करिश्माई नेता का नेतृत्व मिला और राष्ट्रव्यापी दलित आंदोलन ने जन्म लिया। यदि गाँवों में समाज की मुख्यधारा से पूरी तरह कटे और महा पिछड़े लोग रोजगार की तलाश में शहर नहीं आते तो वे संपूर्ण पृथक्करण की अवस्था से आंशिक पृथक्करण की अवस्था में प्रवेश नहीं कर पाते और संघर्ष की भावना उनके अंदर जन्म नहीं ले पाती। यद्यपि वे वहां शोषण की चरम सीमा में जी रहे थे इससे कोसर का संपूर्ण पृथक्करण तथा आंशिक पृथक्करण का सिद्धांत सही साबित होता है।

कोजर ने विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों एवं परिस्थितियों में उत्पन्न होने वाले टकरावों के विभिन्न स्तरों की भी पहचान की है। जब लोग अपने उद्देश्यों को पूरी तरह समझ लेते हैं और उन्हें पाने के लिए कार्यरत होते हैं तब उनके उद्देश्य चाहे तर्कसंगत हो अथवा न हो उनकी विरोध करने की प्रवृत्ति अत्यधिक ऊंचाई पर नहीं पहुंच पाती। उदाहरण के लिए यदि काम करने वाले लोगों को अच्छे वेतन मिलने की उम्मीद हो और उन्हें अपने आर्थिक हालात के बेहतर होते जाने की संभावना हो तो उनके विरोध करने की प्रवृत्ति कम होती चली जाएगी और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति यदि पूरी तरह हो जाए तो टकराव की स्थिति वही खत्म हो जाएगी। संघर्ष करने वालों में हिंसा और विरोध की प्रवृति बहुत तेज होती है। जब वे अपने उद्देश्यों की ओर भावनात्मक होकर आगे बढ़ रहे होते हैं और उद्देश्यों तक पहुंचने की संभावना स्पष्ट नहीं होती, इस अवस्था में आंशिक रूप से पिछड़े हुए लोग भावात्मक रूप से उद्वेलित होते हैं इसीलिए वे अधिक हिंसक हो जाते हैं। उदाहरण के लिए धार्मिक पहचान, नैतिक पहचान अथवा राष्ट्रीय से जुड़े हुए मामलों को ले तो हम पाएंगे कि

वहां संघर्ष की प्रवृत्ति बहुत तेज होती है। इसका कारण यह होता है कि इन मामलों में उनके उद्देश्य तर्कसंगत नहीं होते, बल्कि वे सब भावनात्मक उन्माद से भरे होते हैं। उदाहरण के लिए उत्तरी आयरलैंड में कैथोलिक चर्च और प्रोटेस्टेंट चर्च के अनुयायिओं के बीच भीषण टकराव की स्थिति आज भी बनी हुई है और उनके बीच खूनी झड़पों के समाचार आते रहते हैं।

कोजर ने टकराव अथवा द्वन्द के क्रियात्मक पहलुओं को दो भागों में विभाजित किया है- बाह्य द्वन्द एवं आंतरिक द्वन्द्व। सामाजिक समूहों में आंतरिक द्वन्द्व भी होते हैं और विभिन्न समाजों के बीच टकराव की स्थिति पाई भी जाती है। आंतरिक टकराव बार-बार होते रहते हैं, परंतु इतने गंभीर नहीं होते। जब दो या दो से अधिक विपरीत विचारों वाले समूह एक साथ रहने को विवश होते हैं तो उनके बीच टकराव की स्थिति प्रायः बनी रहती है। टकराव बार-बार होते हैं परंतु आर-पार के नहीं होते, उनकी धार अत्यधिक तीव्र नहीं होती। काले और गोरे व्यक्ति अमेरिका में एक साथ रहते हैं, हिंदू और मुसलमान भारत में एक साथ रहते हैं, कैथोलिक चर्च और प्रोटेस्टेंट चर्च के अनुयाई ब्रिटेन में एक साथ रहते हैं उनके बीच तनाव की स्थिति प्रायः बनी रहती है। छोटे-मोटे टकराव भी होते रहते हैं परंतु ये टकराव इस स्तर पर कभी नहीं पहुंच पाते कि भीषण रक्तपात में बदल जाएँ और फिर से एक साथ रहने की स्थिति फिर से उत्पन्न न हो सके। समाज के अंतरिम नियमों एवं कानूनों के द्वारा राज्य की व्यवस्था आदि के माध्यम से छोटे स्तर के टकरावों एवं तनावों को दूर कर दिया जाता है और फिर सब मिलकर रहने लगते हैं। छोटे स्तर पर होने वाले टकरावों का एक फायदा यह होता है कि इससे प्रशासनिक प्रणाली में सुधार आ जाते हैं और लोगों के बीच आपसी समझ का स्तर बढ़ जाता है। मजदूरों और व्यवस्थापकों के बीच संबंध बेहतर हो जाते हैं, श्रमिक कानूनों में सुधार हो जाते हैं। बाह्य संघर्ष अंततः आंतरिक समरसता को जन्म देते हैं और विभिन्न समूहों के बीच फिर से टकराव न हो इस उद्देश्य से उनमें रहने वाले लोगों को अपनी अपनी सीमाओं को पहचानने और उनका ध्यान रखने की आदत पड़ जाती है। इस प्रकार बाह्यतथा आंतरिक टकरावों के परिणाम अंततः सामाजिक समरसता लाने में सहयोगी ही होते हैं।

4.3 आधुनिक संघर्षवादी विचारक

आधुनिक युग में समाजशास्त्र में संघर्ष के सिद्धांत को स्थापित करने वालों में राल्फ डहरेन्डोर्फ, का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। राल्फ डहरेन्डोर्फ भी जर्मन थे। लंबे समय तक वे "लंदन स्कूल आफ इकोनॉमिक्स" के निदेशक रहे। इसी दौरान उन्होंने समाजशास्त्र में संघर्ष के सिद्धांत को पहचान दी और बड़ी संख्या में इस सिद्धांत को मानने वाले अस्तित्व में आए। अपने समय के सामाजिक सिद्धांतों का अध्ययन करने और समझने के बाद राल्फ डहरेन्डोर्फइस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मार्क्सवाद और प्रक्रियात्मक संरचनात्मकतावाद दोनों ही सिद्धांत आधुनिक युग की औद्योगिक पूंजीवादी समाजों की व्याख्या करने में असमर्थ हैं। मार्क्सवाद की अवधारणा आधुनिक समकालीन लोकतांत्रिक पद्धति की प्रवृत्तियों को समझने और उसकी व्याख्या करने में पूरी तरह असफल रही हैं, क्योंकि समकालीन लोकतांत्रिक समाजों में सहमति एवं मिलकर रहने की भावना विशेष रूप से देखने को मिलती हैं। प्रक्रियात्मक संरचनावाद समकालीन समाजोंमें होने वाले परिवर्तनों की पहचान करने में असमर्थ हैं और मार्क्सवाद का सिद्धांत टकराव और संघर्ष को केंद्र में रखकर चलता है, वह आधुनिक समाज की संरचना की कल्पना नहीं कर सकता। आधुनिक लोकतांत्रिक समाज की विशेषता यह है कि उसमें एकता और टकराव दोनों ही ताकतें साथ-साथ चलती दिखती हैं। ऐसे समाज अब कम देखने को मिलते हैं जहां विरोध और एकत्व दोनों ही मौजूद न हो। कार्ल मार्क्स की कल्पना में जो सामाजिक ढांचा था वह एक द्वंद्वात्मक मॉडल है जिसमें

दो वर्गों के बीच विरोध सदा विद्यमान रहता है। जबकि आधुनिक समाज इतना जटिल है कि यहां यह जान पाना संभव ही नहीं है कि समाज में कितने प्रकार के वर्ग हैं और कैसी कैसी विविधता विद्यमान है। इस समाज को कार्ल मार्क्स के सिद्धांतानुसार दो वर्गों में बांटकर नहीं देखा जा सकता। अब समाज में शोषक और शोषित वर्ग अलग-अलग नहीं दिखते। आधुनिक औद्योगिक समाज में मजदूरों के संघ मौजूद हैं जो उनकी मांगों व समस्याओं को उन्हीं के सामूहिक बल से उठाते हैं और उनके समाधान निकाल लेते हैं। उनकी मदद के लिए कानूनी ढांचा भी मौजूद है। इसके अलावा अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ तथा मानवाधिकार आयोग जैसे संगठन भी है जो वैश्विक स्तर पर मजदूरों की मांगों तथा उनके अधिकारों के समर्थन में आवाज उठाते रहते हैं।

संपत्ति पर निजी अधिकार तथा एकाधिकार की स्थिति भी अब कम होती जा रही है। बाजार में संयुक्त पूंजी कंपनियां अस्तित्व में आ चुकी है जिनके मालिकाना हक पूंजीपतियों के पास भी होते हैं और कार्यरत प्रबंधकों तथा शेयरधारकों के पास भी। कंपनियों सबकी में संयुक्त भूमिकाएं होती हैं। डहरेन्डोर्फ ने औद्योगिक समाज में वर्ग तथा वर्ग-संघर्ष पर बहुत काम किया है। उन्होंने वर्ग की परिभाषा देते हुए कहा है – "समाज में वर्ग से अभिप्रायः संगठित अथवा असंगठित मानव-समूहों से है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मिल जुलकर रहने वाले संगठनों में रुचि रखते हैं। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रुचियों का मौजूद रहना यह साबित करता है कि वर्गों में सदा संघर्ष की भावना निहित रहती है। वर्गों में रुचि के अनुपात के आधार पर तथा संपत्ति तथा सत्ता की प्रकृति की जटिलता के आधार पर डहरेन्डोर्फवर्गों को दो श्रेणियों में विभाजित करते हैं– 1) आदेशात्मक वर्ग, 2) आज्ञापरक वर्ग।

सत्ताधारी वर्ग तथा सत्ता रहितवर्ग के बीच टकरावव संघर्ष की स्थिति स्वाभाविक रूप से बनी रहती है। इस स्थिति की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि समाज में वर्ग विशेष परिस्थिति में ही बने रहते हैं क्योंकि कुछ लोग एक जगह जहां प्रभुत्व धारण किए होते हैं वहीं दूसरी ओर वे दूसरी जगह प्रभुत्वहीन होते हैं। अतः समाज में वर्ग सदा बने ही रहेंगे यद्यपि समाज में उनकी कोई ढांचागत पहचान नहीं होगी। इसीलिए प्रभुत्व के संरचनात्मक तथा स्थिर अनुक्रम को डहरेन्डोर्फस्तर की संज्ञा देता है तथा वर्ग की अवधारणा को वास्तविक समाज की गत्यात्मक प्रवृत्ति मानता है। द्वंद्वात्मक सिद्धांत को मानने वाला दूसरा महत्वपूर्ण विचारक गेरहार्ड लेंस्की है। बीसवीं शताब्दी तक समाजशास्त्री प्रभुत्व या सत्ता को बहुत महत्व देते थे। समाज में प्रभुत्व किस प्रकार प्राप्त किया जाता था और उसका इस्तेमाल किस प्रकार किया जाता था, वे उसे आर्थिक श्रेणी पर आधारित वर्ग की शक्ति अथवा सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया का परिणाम नहीं मानते थे। 1966-1975 में लेंस्की ने वर्ग को एक जैसी हैसियत के व्यक्तियों का समूह करार दिया जो समाज में लगभग बराबर सामर्थ्य, महत्व व प्रतिष्ठा वाले होते हैं। आधुनिक युग के समाजशास्त्रियों को यह बात समझ में आ गई है कि समाज में शक्ति का खेल चलता है जो अधिक गतिशील, बहुआयामी और विविधताओं से भरा होता है। यह शक्ति किसी एक स्थान अथवा व्यक्ति में न होकर अनेक पद व दायित्व संभालने वाले व्यक्तियों में निहित होती है तथा इसे प्राप्त करने के स्रोत भी अनेक होते हैं। मुख्य प्रश्न यह है कि शक्ति के वितरण का आधार क्या है? किसे क्या मिलता है और किस आधार पर मिलता है?

इस प्रकार वर्ग की अवधारणा आधुनिक युग में वर्गीय शक्ति की अवधारणा में बदल गई। आधुनिक समाज में शक्ति के विविध स्तर हैं। इसीलिए नियंत्रण के भी अनेक स्तर होते हैं और कंपनी की संरचना की तरह विभिन्न स्तरों पर बड़ी संख्या में लोग दायित्व संभालते हैं। यह संभव है कि प्रशासनिक शक्ति से युक्त प्रबंधकों को उद्यम में होने वाले मुनाफे में भागीदारी न मिले, परंतु कंपनी में काम करने वाले कर्मचारी सामूहिक रूप से दबाव बनाकर

कंपनी के मुनाफे में हिस्सा ले सकते हैं। इस प्रकार प्रभुत्व व नियंत्रण का मतलब हमेशा यह नहीं होता कि प्रभुत्वधारी तथा नियंत्रण करने वाले लोगों को उद्यम में होने वाले लाभ का हिस्सा जरूर मिलेगा। राइट(1979:18)ने वर्ग की अवधारणा को संशोधित किया। उनके अनुसार – "वर्गों की व्याख्या अधिक से अधिक उत्पादन, तकनीकी रूप में अलग-अलग तरह के कर्मचारियों पर नियंत्रण तथा दायित्व निर्वहन के आधार पर की जाती है।" इस प्रकार प्रबंधक मालिकों की श्रेणी में नहीं गिने जाते।

ऐसे में टकराव प्रच्छन्न रूप में बना रहता है परंतु वह तब तक प्रकट नहीं होता जब तक नियंत्रण करने वाले पदों पर बैठे लोग वैधानिक नियमों के दायरे में रहते हुए शक्ति का इस्तेमाल करते हैं। इस प्रकार आधुनिक समाजों में योग्य एवं अनुभवी लोग अपनी प्रतिभा व क्षमता के बल पर जिम्मेदारी के पदों पर आसीन हो जाते हैं और उनके प्रभुत्व को वे लोग बिना कोई प्रश्न किये स्वीकार कर लेते हैं जो उनके नीचे काम करते हैं। न्यायसंगत प्रभुत्व संपन्न लोग अपने दायित्वों का निर्वाह करते हुए समाज में स्थिरता लाते हैं। टकराव की स्थिति केवल तब ही पैदा हो सकती है जब नियंत्रण करने वाले प्रभुत्व संपन्न लोग अन्याय करें अथवा कानून का उल्लंघन करें।

4.4 विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत

समाज में वर्गवाद की प्रवृति तथा संघर्ष के सिद्धांत की व्याख्या करने के उद्देश्य से लेंस्की तथा डहरेन्डोर्फ विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत लेकर आए। विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत को जन्म देने का श्रेय सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री तथा राजनीति विदविल्फ्रेडो परेटो को है। विल्फ्रेडो परेटो का जन्म 1848 में इटालियन पिता तथा फ्रांसीसी माता से फ्लोरेंस में हुआ था। वहीं रहकर उन्होंने शिक्षा प्राप्त की और महान विचारक बने। मूलतः वे वर्गीय सिद्धांत में विश्वास रखते थे। समाज तथा सामाजिक प्रणालियों में जो प्राकृतिक रूप से संतुलन बनाए रखने की प्रवृत्ति होती है, उसमें विल्फ्रेडो परेटोकी गहरी निष्ठा थी। एडमस्मिथ का अनुसरण करते हुए उन्होंने राज्य की सत्ता के विरुद्ध मुक्त आदान-प्रदान तथा उदारवादी सिद्धांत को समाज के लिए ज्यादा उपयोगी बताया था। वे शक्ति को भ्रष्टाचार व दुर्भावना का हथियार मानते थे जिसे राज्य दमनकारी नीतियों के लागू करने में इस्तेमाल करता है। यद्यपि उन्होंने समाज में जो आयु, लिंग, शारीरिक शक्ति तथा स्वास्थ्य के आधार पर असमानताएं देखने को मिलती हैं उनके लिए वे भेदभाव तथा स्तरीकरण की प्रवृत्ति को जिम्मेदार मानते हैं। जनसांख्यिकीय विविधताओं के आधार स्वरूप मौजूद बांझपन तथा उत्पादकता के लिए भी वेभेदभाव तथा स्तरीकरण की प्रवृत्ति को ही जिम्मेदार ठहराते हैं। ऐसी स्थिति में टकराव, विरोध व संघर्ष का बना रहना अनिवार्य है तथा स्वाभाविक भी। समाजशास्त्रीयदि इन बुराइयों को समझ भी जाते हैं, तब भी उनके लिए इन्हें जड़ से उखाड़ फेंकना मुश्किल है। जब वे यह मानते हैं कि समाज में बदलाव सदैव होते रहते हैं, तब वे यह मानने को तैयार नहीं होते कि यह बदलाव सदा एक जैसी प्रवृत्ति वरफ्तार के साथ होते हैं। उनका मानना है कि बदलावों की रफ्तार कभी मंद होती है तो कभी तेज, कभी स्थिरता भी देखने को मिलती है। इस प्रकार उनका टकरावया संघर्ष का सिद्धांत कार्लमार्क्स के सिद्धांत का धुर विरोधी है।

समाज में जो आर्थिक तथा संगठनात्मक स्वरूप उभरकर सामने आते हैं उनके लिए वे किसी कारण विशेष को जिम्मेदार नहीं मानते, परन्तु प्राकृतिक कारणों को पूरी तरह जिम्मेदार मानते हैं, मनुष्यों की प्रकृति को नहीं। विशिष्ट वर्गीय लोग किसी सामाजिक समूह अथवा वर्ग में से उत्पन्न होते हैं और दूसरों पर अपना आधिपत्य जमाते हैं। विशिष्ट वर्गीय व्यक्ति अपने आप को शक्ति संपन्न बनाने तथा दूसरों पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए

संघर्ष करते हैं, बल प्रयोग करते हैं और विरोध करने वालों को उखाड़ फेकतें हैं फिर विरोधियों को अपने काबू में कर लेते हैं। यह प्रक्रिया समाज में अंदर ही अंदर चलती रहती है और लोगों में बदलाव आते रहते हैं। लेंस्कीकी ने विशिष्ट वर्गों को चार श्रेणियों में बांटा है।विल्फ्रेडो परेटोने भी चार प्रकार के विशिष्ट गुणों का उल्लेख किया है– पहला है दमनकारी कुलीन वर्ग (परेटोने इसे सिंह की संज्ञा दी है) दूसरा है उत्प्रेरक कुलीन वर्ग (परेटोने इसे लोमड़ी कहा है) तीसरा है चालाक कुलीन वर्ग (जिसे परेटोनेउल्लू कहा है) चौथा है आधिपत्यवादी कुलीन वर्ग (जिसे परेटोने भालू की संज्ञा दी है)। ये चारों कुलीन वर्ग के आदर्श प्रकार हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चालाक किस्म का व्यक्ति भी आधिपत्य स्थापित कर सकता है और लोगों का दमन करते हुए उन्हें अपने कब्जे में किये रह सकता है। उत्प्रेरक की श्रेणी में आने वाला कुलीन दूसरों पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए तरकीब का इस्तेमाल करता है। डहरेन्डोर्फ समाज को दो वर्गों में बांटता है शासक और शासित। यह सिद्धांत भी कुलीन वर्गीय सिद्धांत से मेल खाता है।

जॉन स्कॉट (2001) कुलीन वर्गीय सिद्धांत को समाज के लिए सार्थक नहीं मानता क्योंकि इसमें दूसरों को बलपूर्वक अपने अधीन बनाए रखने की प्रवृत्ति निहित है। डहरेन्डोर्फ तथा परेटोके सिद्धांतों पर विचार करें तो ये दमनकारी प्रवृत्ति के कारण सर्व स्वीकृत नहीं माने जा सकते। जॉन स्कॉट के अनुसार बलपूर्वक दूसरों को अपने अधीन रखने का विचार विवेक पूर्वक समाज को चलाए जाने वाले विचार से बदला जाना चाहिए। शक्ति की परिभाषा इस बात से की जा सकती है कि वह कितना और कैसा प्रभाव डालती है। वास्तविक सामाजिक शक्ति वह है जो सतर्कता पूर्वक उन लोगों में बदलाव लाए जो सामाजिक व्यवस्था के अधीन रहते हैं। अतः विशिष्ट जनवे नहीं हैंजो दूसरों की तुलना में अत्यधिक योग्य हैं तथा ऊँचें स्तर वाले हैंद्यअपितु, वे हैं जो प्रभुत्व का इस्तेमाल करते हैं तथा इसे धारण करने की क्षमता रखते हैं। प्रभुत्व का इस्तेमाल शून्य में नहीं किया जा सकता। अतः विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत अथवा कुलीन तंत्रीय सिद्धांत की परिकल्पना तभी की जा सकती है जब दो वर्ग मौजूद हों– एक वह जो प्रभुत्व धारण करता है तथा दूसरा वह जिस पर प्रभुत्व स्थापित किया जाता है। शक्ति की अवधारणा के लिए दो पक्षों का होना जरूरी है जो आपस में टकरा भी रहें हों और उनके लक्ष्य भी स्पष्ट हों। विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत वंशानुक्रम पर जोर देता है तथा अपने आप को अस्तित्व बनाए रखने के लिए सामाजिक शक्ति का इस्तेमाल करता है। अतः यह एक संघर्षात्मक अथवा टकराव का सिद्धांत ही है।

4.5 वर्ग संघर्ष का सिद्धांत की नवीन प्रवृतियां

बीते समय समाज में संस्थागत ढांचों को सांस्कृतिक संरचना के आधार पर निर्मित करने का रुझान देखने को मिलता था, तार्किक आधार पर सामाजिक संरचना के प्रति रुझान नहीं था। बारहवीं शताब्दी का अत्यधिक प्रभावशाली विचारक मिशेल फौकॉ समाज में शक्ति के इस्तेमाल की व्याख्या करने के बारे में एक नई धारणा लेकर आया। अब तक विद्वानों की जो राय सामाजिक शक्ति संतुलन के बारे में थी, फौकॉ की राय इस मामले में नितांत भिन्न थी। फौकॉ के अनुसार शक्ति समाज के कुछ खास लोगों में अथवा कुछ स्तरों में निहित नहीं होती अपितु ये पूरे समाज में व्याप्त होती है, समाज के सभी घटकों में निहित रहती है। शक्ति सदैव विध्वंसकारी नहीं होती, बल्कि यह सामूहिक प्रयासों से समर्थन पाकर समाज में सुधार लाने तथा उत्पादन बढ़ाने में सहयोगी भी हो सकती है। समाज में अंतर्निहित शक्ति के बारे में फौकॉ का विचार है कि यह समाज में मौजूद किसी भी व्यक्ति के द्वारा किसी भी स्थिति में सामाजिक हित के लिए इस्तेमाल की जा सकती है। उदाहरण के लिए- मित्रों के एक समूह में कोई एक व्यक्ति किसी खास स्थिति में नेतृत्व की भूमिका अदा कर सकता है जैसे- संकट के समय बीमार व्यक्ति को अस्पताल ले जा सकता है, आवश्यकता पड़ने पर

अपने किसी साथी को रमणीय स्थल पर ले जा सकता है, कोई स्कूल बस के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने पर उस में फंसे हुए लोगों की मदद करसकता है। फौकॉ के अनुसार संघर्ष, सहमति तथा विरोध हर संबंध के अनिवार्य अंग होते हैं।

जॉन स्कॉट की व्याख्या के अनुसार- शक्ति के दो तरह के उपयोग हो सकते हैं, एक दमनकारी उपयोग जिसके तहत लोगों को दंडित किया जा सकता है, दूसरे सहयोगी उपयोग जिनका आधार तर्क, औचित्य एवं आवश्यकता होते हैं। शक्ति के पहले प्रभाव को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक यह कि शक्ति का इस्तेमाल दूसरों को अपने अनुसार जबरन चलाने के लिए किया जाए और दूसरी अवस्था में दो तरह से शक्ति का उपयोग संभव है। एक, जहाँ शक्ति प्रदर्शन आवश्यक है तथा दूसरा,जहाँ शक्ति प्रदर्शन विधि सम्मत है। शक्ति का रचनात्मक प्रयोग सामूहिक विश्वासों तथा व्याप्त मूल्यों के आधार पर किया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे अर्थ में किया जाने वाला शक्ति प्रयोग अपेक्षाकृत कम शोषणकारी है अथवा वंशानुगत शक्ति परीक्षण को बढ़ावा नहीं देता, बल्कि इसका अर्थ यह है कि ये लोगों को दूसरी तरह सोचने के लिए दबाव बनाता है। शक्ति के दूसरे प्रकार के प्रयोग में टकराव निहित रहता है और साथ ही इसमें एक प्रकार की असहमति भी निहित रहती है क्योंकि इसमें स्थिति की वास्तविकता को छिपाने की प्रवृत्ति होती है।

फौकॉ ने अपनी व्याख्या के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास किया है कि ज्यादातर नियंत्रण करने वाले तरीके वह होते हैं जिनमें स्पष्टता बहुत कम होती है। रैंडाल कोलिंस (1975) ने टकराव के सिद्धांत में कुछ परिवर्तन किए हैं। फौकॉल्टकी तरह वह भी टकराव तथा संघर्ष को जीवन के दिन प्रतिदिन के कार्यों में देखता है। मनुष्यों के बीच जितने भी संबंध बनते हैं उनमें कुछ मनमुटाव, कुछ आधिपत्य की भावना तथा कुछ टकराव मौजूद रहते हैं। इसके साथ ही उनमें एकत्व की भावना भी निहित रहती है। हाल के कुछ विद्वान जैसे कूलन टकराव के द्वंद्वात्मक सिद्धांत से हटकर सोचते हैंद्यवे प्रायोगिक आंकड़ों पर काम करना ज्यादा पसंद करते हैं। उन्हें जमीनी सिद्धांतों में अधिक विश्वास है।

गोफमैन ने पारस्परिक प्रभाव डालने वाले सिद्धांतों के मॉडल का इस्तेमाल किया है। वह कार्यों को दो श्रेणियों में विभाजित करता है– आगे बढ़ कर किए जाने वाले कार्य तथा पीछे रहकर किए जाने वाले कार्य। गोफमैन सभी सामाजिक अन्तर्क्रियाओं को सामने आकर अंजाम दिया जाना पसंद करता है। हममें से ज्यादातर लोग उन कार्यों को भी अंजाम देते हैं जिन्हें हम करना नहीं चाहते थे। हम बहुत कुछ ऐसा भी कह जाते हैं जो कहना हमें पसंद नहीं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जो लोग दूसरों के दबाव में अथवा उनके आदेशों पर कार्य करते हैं, वे उन्हें हमेशा मन से नहीं करते। उनके मन में असहमति का भाव रहता है जिसे वे प्रकट नहीं कर पाते। किसी से आदेश पाकर काम करके हम प्रायः खुश नहीं होते, हम अपनी मर्जी से पूरी आजादी के साथ काम करने की इच्छा रखते हैं। वह व्यक्ति जो अपने मालिक अथवा प्रबंधक से आदेश लेकर कार्यालय में काम पूरा करता है,उसके मन में उसके प्रति विरोध फुनफुनाता रहता है जिसे वह उस समय प्रकट नहीं करता, परंतु जब अपने घर पहुंचता है तो पत्नी के सामने बॉस को गाली देता है। उसे मूर्ख भी कह सकता है। इस प्रकार कार्य की पूर्ति के समय व्यक्ति अपने मन की वास्तविक स्थिति तथा प्रतिरोधी भाव को छुपा लेता है। इसी प्रकार एक जैसी हैसियत वाले लोग प्रायः एकता प्रदर्शित करने के लिए, सामाजिक अखंडता बनाए रखने के लिए, मेल-मिलाप दिखाने वाले कार्य जैसे साथ-साथ खाना, लोगों के कामों में हाथ बंटाना आदिकार्य करते रहते हैं। इस प्रकार संगठनात्मक ढांचों की जटिलताएं प्रभुत्व के लिए संघर्ष द्वारा अनुकूलित कर दी जाती हैं। इस प्रकार संतुलन बना रह सकता है परंतु कभी-कभी विरोध प्रकट करने की

नौबत आ ही जाती है। अतः प्रतिरोध को प्रायः दबाकर ही रखा जाता है क्योंकि प्रतिरोध के कारण कार्यालय में बॉस को बुरा लग सकता है अथवा कार्यस्थलअथवा कारखाने में हड़ताल भी हो सकती है।

समकालीन विचारक विरोध की बारीकियों को समझने तथा सही प्रबंधन द्वारा उनका हल निकालने में ज्यादा रुचि रखते हैं। वे नहीं चाहते कि दोनों ओर से विरोध बढ़े, लोग अपने-अपने पक्ष के साथ अड़ कर खड़े हों और सीधा टकराव हो जाए। वे आदेश देने वाले लोगों तथा आदेश के अनुसार कार्य करने वाले लोगों के संबंधों का बारीकियों से विश्लेषण करते हुए टकरावों का समाधान तलाशते हैं तथा संसाधन व शक्ति प्राप्त करने के लिए शुद्ध प्रतियोगिता की भावना को बढ़ावा देते हैं।

4.6 सारांश

इस इकाई में शिक्षार्थियों ने सामाजिक संगठन की व्याख्या करने वाले सिद्धांत के बारे में पढ़ा। इस इकाई में शिक्षार्थियों ने उन सिद्धांतों के बारे में पढ़ा जो संसाधनों की समीक्षा करते हैं तथा समाज में शक्ति के वितरण की व्याख्या करते हैं। मानव समाजों में हर कोई एक जैसा नहीं होताद्य समाज चाहे बड़ा हो या छोटा, लोगों का मूल्यांकन उनकी हैसियत के अनुसार किया जाता है। अधिकतर समाजों में संसाधनों पर नियंत्रण तथा उनका वितरण समाज के संगठनात्मक ढांचे के अनुसार सुनिश्चित किया जाता है। हैसियत के विभिन्न स्तर समाज में मौजूद रहते हैं। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि मनुष्यों में असमानता अनिवार्य रूप से पाई जाती है। कुछ यह मानते हैं कि इस असमानता को मिटाया जा सकता है तथा एक समरस समाज का निर्माण किया जा सकता है जिसमें सब आपसी समझ से बिना किसी भेदभाव के तथा ऊंच नीच की भावना से ऊपर उठकर रहते हों। न कोई गरीब हो न अमीर, न कोई शोषक होन शोषित। परेटो असमानता की स्थिति को मनुष्यों में अवश्यंभावी मानता है। जबकि कार्ल मार्क्स का यह मानना है कि शोषक व शोषित के बीच की अमीरी व गरीबी की खाई पाटी जा सकती है। जैसा कि हमने देखा, टकराव के सिद्धांत का श्रेय प्रायः कार्ल मार्क्स को दिया जाता है। वर्ग भेद तथा वर्गीय संघर्ष का सिद्धांत कार्ल मार्क्स के साथ जुड़ गया है। परंतु बाद के विचारक, समाज में वर्गीय संघर्ष के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भी इन वर्गों की प्रकृति की व्याख्या करते हैं। वे नहीं मानते कि टकराव अथवा विरोध के कारण समाज में धन व संसाधनों का असमान वितरण ही है। उनके अनुसार समाज में प्रभुत्व के अन्य अनेक स्रोत भी होते हैं। जैसे की दक्षता, ज्ञान,राजनैतिक नेतृत्व तथा अन्य मामलों में लैंगिकता, जाति, कुल आदि भी।

आधुनिक युग में पूंजीवादी समाज का स्वरूप बदल गया है। कार्ल मार्क्स की पूंजीवादी अवधारणा से यह नितांत भिन्न है। अब औद्योगिक घराने हैं, निजी उद्योग संस्थान हैं, मिश्रित पूंजीवाली कंपनियां है जिनमें स्वामित्व, प्राधिकार एवं नियंत्रण संगठनों के विभिन्न स्तरों में निहित रहता है। ऐसे में विचारक किसी एक शक्ति स्रोत को प्रमुखता नहीं दे सकते। इसीलिए शक्ति कहां और किसमें निहित है इस बारे में अलग-अलग मत हैं। कुछविद्वान् प्राधिकार में तथा कुछ विधिसम्मतता में शक्ति देखते हैं, कुछ दबदबे में तथा कुछ दूसरों से अपने प्रभाव तथा क्षमता के बल पर अपने अनुसार काम करवा लेने की योग्यता में शक्ति का निवास मानते हैं। एक ओर वर्गभेदवादी एवं वर्गसंघर्ष के सिद्धांत में विश्वास रखने वाले पारंपरिक विचारक हैं जिनके अनुसार बड़े तथा व्यापक वर्ग संघर्ष से होने वाली क्रांति होती है और बड़े स्तर पर बदलाव आते हैं। दूसरी ओर आधुनिक विचारक हैं जिनका मानना है कि टकराव जीवन की दिन-प्रतिदिन की घटनाओं के फलस्वरूप सामने आते रहते हैं। अति आधुनिक विचारक प्रयोगात्मक अनुसंधान में विश्वास रखते हैं तथा यह मानते हैं कि छोटे

मोटे वैभिन्य व टकराव सदा ही मौजूद रहते हैं और इनके कारण अंततः समाज में समरसता बनी रहती है। वर्ग संघर्ष में विश्वास रखने वाले विचारक प्रतिरोध को सामाजिक अखंडता तथा सामाजिक संतुलन के लिए अनिवार्य मानते हैं। उनका व्यवहारिकतावादी विचारकों के साथ मतभेद केवल इस तथ्य पर है कि वे सदा इस बात पर जोर देते रहते हैं कि संतुलन किस प्रकार स्थापित किया जाए और फिर उसे किस प्रकार बनाए रखा जाए। क्योंकि समाज में असमानता और शोषण किसी न किसी रूप में प्रायः बने ही रहते हैं। वे कम या ज्यादा हो सकते हैं पर पूरी तरह समाप्त नहीं हो पाते। इसके कुछ कारण वंशानुगत है तथा कुछ लोगों की क्षमताओं में विद्यमान रहने वाली विविधताएं हैं।

इस प्रकार टकराव व वर्ग संघर्ष के सिद्धांत में विश्वास रखने वाले विचारक यह मानते हैं कि सामाजिक संबंधों तथा सामाजिक संगठनों की जड़ों में मतभेद व प्रतिरोध अनिवार्य रूप से पाए जाते हैं। समाज अपने संगठनात्मक ढांचों में बदलाव लाते हुए सदैव बदलता रहता है और स्थिरता व समरसता बनाए रखने के लिए प्रयासकरता रहता है। प्रतिरोध को लगातार कम करते जाना तथा ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न करते रहना इनका उद्देश्य रहता है कि वे प्रकट न हो सकें।

वर्ग संघर्ष के सिद्धांत का उद्देश्य सामाजिक संगठन का तथा सामाजिक व्यवहार का समग्रता के साथ अध्ययन करना है। देखना यह है कि इस सिद्धांत के समर्थक वृहत ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य अपनाते हैं या स्थितिपरक प्रयोगात्मक। सामाजिक असमानता, सामाजिक स्तरीकरण तथा सामाजिक वर्गीकरण का विशद अध्ययन करने में वर्ग संघर्ष का सिद्धांत बहुत सफल रहा है। उसने इन सब की यथास्थिति को भी अच्छी तरह समझा है तथा उसके कारणों को भीद्य कुल मिलाकर वर्ग संघर्ष का सिद्धांत इस प्रकार की तमाम असमानताओं को समाप्त करने अथवा कम करने के लिए सबसे कारगर सिद्धांत है। परंतु यह सिद्धांत राजनैतिक नहीं है।

बोध प्रश्न

1) समाज का अध्ययन करने की दृष्टि से प्रकार्यात्मक सिद्धांत तथा वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत में मुख्य अंतर क्या है?

.....

.....

.....

2) सामाजिक परिवर्तन के लिए वर्ग संघर्ष का सिद्धांत एक बृहत ऐतिहासिक प्रविधि है। व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3) विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत क्या है? यह प्रतिरोध की व्याख्या किस प्रकार करता है?

.....

.....

.....

4) वर्ग संघर्ष के सिद्धांत की स्थापना में राल्फ डहरेन्डोर्फके योगदान पर प्रकाश डालिए?

.....

.....

.....

.....

5) समाज में सत्ता अथवा शक्ति कहां अवस्थित रहती है? समझाइए।

.....

.....

.....

.....

6) सामाजिक सत्ता की सूक्ष्म प्रक्रिया से क्या तात्पर्य है? उचित उदाहरण देकर समझाइए।

.....

.....

.....

.....

4.7 सन्दर्भ

कोलिंस, रैंडल. (एड) 1994. फोर सोशियोलॉजिकल ट्रेडिशन्स. ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

कोलिंस, रैंडाल. 2004. इंटरेक्शन रिचुअल चेन्स. प्रिंसटोनः प्रिंसटोन यूनिवर्सिटी प्रेस.

कोसेर, लेविस. 1956. द फंक्शन्स ऑफ सोशल कनफ्लिक्ट.रूतलेज.

डहरेन्डोर्फ, राल्फ. 1959. क्लास एंड क्लास कनफ्लिक्ट इन इंडस्ट्रियल सोसाइटी. स्टैनफोर्डः स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

फौकॉ, मिशेल. 1975. डिसिप्लिन एंड पनिश. लंदनः एलन लेन.

गिड्डेन्स, अन्थोनी. 1976. न्यू रूल्स ऑफ सोशियोलॉजिकल मेथड. कैंब्रिजः पॉलिटी प्रेस.

गिड्डेन्स, अन्थोनी. 1979. सेंट्रल प्रोब्लेम्स इन सोशल थ्योरी, लंदनः मैमिलन.

लेंस्की, गेरहार्ड. 1966. (रीप्रिंट 1984). पावर एंड प्रिविलेजः अ थ्योरी ऑफ सोशल स्ट्रैटिफिकेशन. नार्थ कैरोलिना, यूनिवर्सिटी ऑफ नार्थ कैरोलिना प्रेस

मिल्स, सी राइट. 1956. द पावर इलीट. न्यू यॉर्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

परेटो, विल्फ्रेड. 1916. (रीप्रिंट 1963). अ ट्रीटीसे ऑन जनरल सोशियोलॉजी. न्यू यॉर्कः डोवेर.

पौलत्जस 1975. क्लासेज इन कंटेम्पररी कैपिटलिज्म. लंदनः न्यू लेफ्ट बुक्स.

रिट्जर, जॉर्ज. (एड.) 1990. फ्रंटियर्स ऑफ सोशल थ्योरीः द न्यू सिंथेसिस. न्यू यॉर्कः कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस.

स्कॉट, जॉन. 2001. पावर. कैंब्रिजः पॉलिटी प्रेस.